''प्रताप नारायण मिश्र के पद्य साहित्य में सामाजिक दशा''

***डॉ॰ सुरेश सरोहा**
एम.ए. (हिंदी), नेट, पीएच॰डी॰,
हिंदी प्रवक्ता,
राजकीय उच्च विद्यालय, मेहुवाला फतेहाबाद। (हरियाणा)

साहित्य शब्द बड़ा ही व्यापक है। इससे समस्त जीवन की अभिव्यक्ति और सम्पूर्ण ज्ञान की चेतना का बोध होता है। सारे जीवन व समस्त ज्ञान को अपने में छिपाकर प्रत्यक्ष शब्द चित्रों में संजोने की शक्ति एक व्यक्ति एक जाति व एक समाज में संभव नहीं होती। इसलिए हर व्यक्ति हर जाति व हर समाज अपने–अपने साहित्य का विकास अपने–अपने ढंग से करता है।

मानव–जीवन में जो सुख–दुख, हर्ष–विषाद, राग–विराग आदि जो द्वन्द्व आते हैं, उन्हीं द्वन्द्वों की अनुभूति का नाम ही जीवन है। इस जीवन और साहित्य में बिम्ब प्रतिबिम्ब का संबंध है। मानव एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उस पर यह प्रभाव होता है। वह सदैव अधिक से अधिक मानव मात्र के लिए लौकिक या पारलौकिक जीवन का सम्बल बन सके। यह तो तभी संभव हो सकता है जब साहित्यकार अपने समय की प्रत्येक स्थिति के प्रति जागरूक हो तथा लोक की आवश्यकता के अनुसार साहित्य का निर्माण करे। साहित्यकार पर उसके समय की सामाजिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। समाज के रीति रिवाज, रहन–सहन, खान–पान व आचार–विचार का उस पर प्रभाव पड़ता है।

प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु मण्डल के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। वैसे तो भारतेन्दु मण्डल के सभी रचनाकार एक से बढ़कर एक हैं, परन्तु मिश्र जी की लेखनी की छठा निराली है। बालमुकुन्द गुप्त ने तो उन्हें एकाध बातों में हरिश्चन्द्र से भी बड़ा स्वीकार किया है – ''पं0 प्रतापनारायण मिश्र में बहुत बातें हरिश्चन्द्र की सी थी। कितनी ही बातों में कम थे परन्तु एकाध में बढ़कर भी थे।''[1]

मिश्र जी के समय में समाज का ढाँचा पूर्ण विशृंखलित था। सभी एक दूसरे की विद्वेष की अग्नि में जल रहे थे। एक दूसरे की बुराई करना मानों उनका उद्देश्य बन गया है। इस काल में समाज में अनेक प्रकार की धार्मिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियाँ व्याप्त थी। समाज में जाति–प्रथा, अस्पृश्यता के साथ–साथ नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी। समाज में मनुष्य आपस में भेदभाव बरतते थे। सबसे बड़ा भेदभाव तो स्त्री व पुरुष का था। स्त्रियों की समाज में बड़ी हीन दशा थी। उस समय की कुछ जातियाँ जैसे – राजपूतों में तो कन्या का पैदा होते ही मार देने की कुप्रथा प्रचलित थी। शिक्षा भी उच्चवर्ग के लोगों तक ही सीमित थी।

देश की प्राचीन परम्परा तो नारी सम्मान करने की थी, बाद में समाज में अनेक बुराइयों के साथ स्त्री समस्या भी समाज में विकट रूप धारण कर गई। ऐसे समाज में मिश्र जी ने समाज में नई चेतना

लाने का प्रयास किया। उनकी प्रत्येक कविता चाहे वह लम्बी हो या छोटी किसी न किसी समस्या के संबंध में संकेत करती हैं। उस समय की सामाजिक स्थिति का चित्र मिश्र जी ने इस प्रकार खींचा है।

''तन मन सो उद्योग न करही, बाबू बनिबे के हित मरहीं।
परदेशिन सेवत अनुरागे, सब फल खाय धतूरन लागे।।''[2]

वे भारतीय समाज की दीन–हीन दशा का चित्रण इन शब्दों में करते हैं –

''सब प्रकार सों देखि दीनता लागति हियो जनु गोली है।
दिन–दिन निर्बल, निरधन निरबस होति प्रजा अति भोली है,
परमो झोपड़ी माहिं धुधित नित रोवत छोरा छोरी है,
ज्यों–ज्यों करि काटत दुख जीवन का सूझति तेहि होरी है।''[3]

समाज की स्थिति को देखकर उन्होंने लोगों को तत्कालीन समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए जागृत किया है। उस समय समाज कई वर्गों में बंटा हुआ था। उच्च वर्ग के लोग शूद्र के हाथ लगा भोजन भी नहीं खाते थे। इनके लिए कुएँ व तालाब इत्यादि भी अलग से बनवाए हुए थे। सभी वर्णों के लोग समाज के द्वारा निर्धारित कार्य करते थे। मिश्र जी ने वर्ण व्यवस्था का कड़ा विरोध किया। वह जाति को श्रेष्ठ न मानकर कर्म व ज्ञान को श्रेष्ठ मानते थे। इसलिए ब्राह्मणों की निरक्षरता पर उन्हें बड़ी चिढ़ थी। ब्राह्मणों पर किया गया एक व्यंग्य इस प्रकार है–

''का खा गा घा ठू बिन पढ़े, तिरवेदी पदवी धरन।
कलह प्रिय जियति कनौजिया, भारत कह गारत करन।।''[4]

समाज सुधारक होने के नाते ब्राह्मणों की बुराई ही नहीं करते बल्कि उनको उनके दुर्गुणों से अवगत कराकर उन्हें त्यागने के लिए प्रेरित करते हैं तथा कहते हैं कि जो कर्त्तव्य उनके होने चाहिए, उन्हें वे पूरा नहीं कर रहे हैं। अपने लेखों के द्वारा वे व्यक्तियों को बताते हैं कि सभी के कर्त्तव्य समान हैं अर्थात् सबको समाज में समान अधिकार है। उन्होंने एक स्थान पर कुछ प्रमुख जातियों की भी आलोचना की है तथा उनके दुष्कृत्यों की ओर संकेत करते हैं –

''द्वित हौ पढ़िवो लिखिबो तजि कै प्रतिग्रह केवल जानत है,
नृप हौ रन रंग न रोचत जो, गनिकान की सों रतिमानस है,
धन लाभ के सातहू दीपन सो, बनिया पर दुःख न मानत है।
निज धर्म भली विधि सों जु नहीं, पहिचानत है तिन्है लानत है।''[5]

मिश्र जी बाल–विवाह के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने समय–समय पर बाल विवाह की कुरीतियों व दोषों से समाज के लोगों को अवगत कराया। उनका मानना है कि चेहरे की लालिमा तभी संभव है, जब बाल विवाह की कुरीति समाप्त हो जाएगी, उससे पहले नहीं।

''बाल ब्याह की रीति मिटाओ, रहे लाली मुख छाया।''[6]

बाल–विवाह की तरह विधवा–विवाह भी समाज में कलंक रहा है। मिश्र जी बड़े ही संवेदनशील व्यक्ति थे। विधवाओं की बुरी दशा देखकर उनका कलेजा कसकता है। वे समाज की उन्नति के लिए विधवाओं की दशा में भी सुधार लाना चाहते हैं –

''कौन करेजो नहिं कसकत सुनि बिपत बाल विधवन की है।
ताते बढ़िकै कन्दना कान्य कुब्ज कन्यन की है।''[7]

मिश्र जी ने साहित्य में समाज की निर्धनता के चित्र भी अपने साहित्य में खींचे हैं। श्रमिक वर्ग की दशा का भी चित्रण करते हुए वे लिखते हैं –

''सांग पात संग रूखो सूखो अन्न खाहि नित।
मोन महंत अति मिलत, रहहि तरसत तेहि के हित।।''[8]

उस समय व्यापार व कृषि आदि से कोई लाभ नहीं था। इसलिए श्रमिकों की निर्धनता अधिक बढ़ गई थी। भारत का सारा धन व कच्चा माल इंग्लैण्ड जा रहा था। समाज की निर्धनता, अकाल बेकारी आदि से मिश्र जी बड़े व्यथित थे। जब उनसे समाज का दुःख देखा न गया तो वे कहने लगे –

''अहो मित्र धन संचय करौ, सब गुन गुन छप्पर पर धरो।
जिहि बिन बुद्धि विकल सब काल, सौ चंडाल का एक कंगाल।।''[9]

समाज में व्याप्त नशाखोरी व वेश्यावृति की कुरीति भी विकट रूप धारण किए हुए थी। वे मानते हैं कि बड़े–बड़े त्योहारों पर मदिरापान की परंपरा गलत है। उन्होंने 'कानपुर महात्म्य' नामक कविता में विस्तार से समाज में व्याप्त मदिरा, अफीम, गांजा आदि नशाखोरी का पर्दाफाश किया है –

''बिछै गलीचा ई मजालिस मां खोपरी पासइं धात बिलाय।
फट फट कोउ बोतल खोले कट कट कोऊ हाड़ चबाय।
खाय अफीमन के कौर गोटा, उधरें और रहि जाय।
ददकें चिलये रे गांजन की मानों बन मो लागि दवारि।।''[10]

मिश्र जी ने वेश्यावृत्ति को देश के लिए घातक माना है। वे अपने समय में वेश्यावृति में वृद्धि को 'समय के फर' मानते हैं, क्योंकि पहले वेश्याओं के यहाँ लोकलाज के मारे जाते थे। लेकिन आजकल वेश्या के यहाँ जाना अमीरी और जिन्दादिली मानते हैं। वेश्याएँ तो धन की प्रेमी हैं, वे लोगों से पैसा ठगती हैं। वे कहते हैं – वेश्याएँ सीधे सादे कामियों का सर्वस्व हर लेती हैं, और अंगुठा दिखा देती हैं।''[11]

समाज में फैली इन बुराइयों का उन्होंने घोर विरोध किया है, इनका विरोध इसलिए किया क्योंकि वे सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते थे। वे रूढ़िवादी समाज को बदलना चाहते थे। समाज की छवि तभी सुधर सकती है। जब पहले इन बुराइयों को जड़ से खत्म किया जाए। इन सबका समूल नष्ट करके ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है।

मिश्र जी अपने समय के श्रेष्ठ समाज सुधारकों में से थे। उन्होंने अपने समय की प्रत्येक स्थिति को अच्छी तरह देखकर गहराई से उस पर विचार कर समुचित सलाह देते हैं। कवि ने आपसी फूट को खत्म करने के लिए सदैव पारस्परिक एकता का प्रचार करते हैं। वे हिन्दु–मुसलमान व क्रिश्चियन तीनों को ही एक समान मानते थे। उनका एकता में पूरा विश्वास था। एकता की स्थापना के लिए वे ईश्वर से भी प्रार्थना करते हैं।

''नर नारी पशु पक्षि कुल, करहिं परस्पर प्रीति।
यह इच्छा परताप की, पुरवहि प्रभु भल रीति।।''[12]

मिश्र जी के साहित्य का अध्ययन करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि वे समाज के आचरण में पाई जानेवाली त्रुटियों से पूर्णतया परिचित थे। वे यह जानते थे कि देश व जातीय गौरव के लिए समाज रचना में कोई पदोष न रहे, यह आवश्यक था। समाज के सभी वर्णों में एकता का भाव होना आवश्यक है। वे मानते थे कि जब तक समाज कुरीतियों, अन्धविश्वासों और बुराइयों से मुक्त नहीं होगा तब तक राष्ट्र की उन्नति भी संभव नहीं है। उन्होंने बाल–विवाह का विरोध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया, स्त्री शिक्षा के पक्ष पर जोर–जोर से प्रचार किया। ब्राह्मणों में पाए जाने वाले जातपात संबंधी आडम्बरों का विरोध किया। वे इन्हें देश व जाति के लिए विनाशकारी मानते थे। उन्होंने वेश्यावृति, जुआखोरी, मदिरापान आदि बुराइयों का भी प्रबल विरोध किया। समाज के स्वस्थ निर्माण व सुचारू संचालन के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। वे सोचते थे कि शिक्षा प्राप्त करके हम अपने पुरातन खोए हुए गौरव को दोबारा से प्राप्त करें। शिक्षा के द्वारा उन्होंने लोगों में सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया।

संदर्भ :

1. *ओमप्रकाश सिंह, संचयिता प्रतापनारायण मिश्र, पृ. 7*
2. *पं0 प्रतापनारायण मिश्र, ग्रन्थावली, पृ. 228*
3. *सं0 नारायण प्रसाद अरोड़ा, प्रताप लहरी, पृ. 132–33*
4. *ब्राह्मण खण्ड 4 संख्या 10 (कंकराष्टक)*
5. *सं0 नारायण प्रसाद अरोड़ा–1642 प्रताप लहरी, पृ. 83*
6. *प्रताप लहरी, पृ. 140*
7. *सं0 नारायण प्रसाद अरोड़ा, प्रताप लहरी, पृ. 22*
8. *ब्राह्मण खण्ड 6 संख्या 4 (युवराज कुमार स्वांगतते)*
9. *प्रताप नारायण मिश्र, लोकोक्ति, पृ. 3*
10. *प्रताप लहरी, पृ. 217*
11. *पं0 प्रतापनारायण मिश्र, ग्रन्थावली, पृ. 57*
12. *पं0 प्रतापनारायण मिश्र, ग्रन्थावली, पृ. 18*